भारतीय धर्माचार की संहिता पुरुषपरीक्षा

इन्द्र कान्त झा

विद्यापति की पुरुषपरीक्षा तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने में अत्यधिक सहायता प्रदान करनेवाली पुस्तक है। कारण, पुस्तक में धार्मिक पक्ष बड़ा सबल होकर उभरा है।[1] सम्पूर्ण पुस्तक में तत्र-तत्र विभिन्न देवी-देवताओं की वन्दना एवं धर्म-चर्चा अनेक रूपों में की गई है, फिर भी प्रधानता शिव और शक्ति की है। देवी-देवताओं के वर्णन क्रम में निबन्धकार विद्यापति की धार्मिक समन्वयवादिता की भावना सहज ही स्फूर्त हो उठी है। कहना होगा कि विद्यापति समन्वयवादी कवि थे। इसीलिए, वे मंगलाचरण में ही आदि शक्ति को नमन करते हुए कहते हैं :

ब्रह्मापि यां नौति नुतः सुराणां
यामर्चितोऽप्यर्चयतीन्दुमौलिः।
यां ध्यायति ध्यानगतोऽपि विष्णु-
स्तामादिशक्तिं शिरसा प्रपद्ये ॥ १ ॥

आदिशक्ति शिव की पूज्या, विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की प्रणम्या है। यहाँ आदि-शक्ति की प्रबलता दिखाई गई है। क्योंकि भक्त जनों को एक आदि-शक्ति की आराधना से ही शिव, विष्णु और ब्रह्मा की आराधना का फल उपलब्ध हो जाता है। यहाँ भी स्पष्टतया कवि ने अपनी उदार भावना को ही संकेतित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ परिच्छेद में विद्यापति ने कुल-परम्परा गत धर्म के विवेचन में, विष्णु और महेश के समन्वित रूप का दिग्दर्शन कराया है। जैसे :

विष्णुं केऽपि निवेदयन्ति गिरिजानाथं च केचित्तथा,
ब्रह्माणं प्रभुमुल्लपन्ति भुवने नाम्नैव भिन्नः महः।
निर्णीतं मुनिभिः सतर्कमतिभिश्चैद्विश्वमेकेश्वरम्,
तच्चिन्तापरमानसे त्वयि पुनर्भिन्ना कुतो भावना ॥ १० ॥

अर्थात्, विश्व में एक ईश्वर है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक हैं। तीनों का तात्त्विक तेज एक ही है। इस नाम भेद की तात्त्विकता का ज्ञान परम तत्त्व का ज्ञान है। उसे केवल ज्ञानी जानते हैं। उसे वितर्कशील बुद्धिवाले ऋषि मुनि निश्चित करते हैं। अतः तद्गत चित्तवालों में उक्त तीनों देवों के प्रति भिन्नता की भावना कभी उत्पन्न नहीं हो सकती।

---

१ महाकवि विद्यापति, सम्पादक, कृष्णनन्दन पीयूष, पृ० २५७।
२ पुरुषपरीक्षा, रमानाथ झा, पृ० ११५।

इस श्लोक में सनातन काल से प्रचलित विद्यापति के ईश्वर-विषयक दार्शनिक सिद्धान्त की साकार-निराकार-भावना स्पष्ट है। विद्यापति की प्रस्तुत त्रिदेव-विषयक समन्वयवादी भावना की गंभीरता से यह संकेत मिलता है कि उन्होंने अपनी इस समर्थ कृति पुरुषपरीक्षा की रचना अपनी प्रौढ़ अवस्था में की थी और उन्होंने अपने कुछ मैथिली पदों की रचना भी प्रायः इसी परिपक्व अवस्था में की थी, इसीलिए पुरुषपरीक्षा तथा कुछ पदावली में प्रायः एक ही समन्वयात्मक दार्शनिक भावना के दर्शन होते हैं।

पुनश्च, इसी ग्रन्थ में एक स्थल पर मुनि द्वारा राजा की शंका को शान्त करने के प्रसंग में विद्यापति कहते हैं कि इस संसार में ईश्वर एक ही है और संसार में जो कुछ है, वह उसी के द्वारा निर्मित है—'एको विधिस्तदकृतं न जगत्सुकिञ्चित। ईश्वर-विषयक सर्वमान्य सिद्धान्त यही था और वे स्वयं एकेश्वरवादी थे।

वैसे विद्यापति के मंगलाचरण को उद्धृत कर भागवत शुक्ल चकोर ने ('माधुरी', १९३५) विद्यापति को शाक्त सिद्ध करने का प्रयास किया है। लेकिन, यह उनका भ्रम है। कारण, इसी पुस्तक में विद्यापति ने शिव की महत्ता के साथ ही काशी की महत्ता भी सिद्ध कर दी है।

सर्वप्रथम, रत्नांगद नामक विधर्मी राजा को जब धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हुई, तब विद्यापति ने उनसे शिव की उपासना की प्रतिज्ञा कराई है :

अद्यारभ्य तत्रचराचरगुरोः शम्भोः पदाम्भोरुहे।
चेतः षट्पदयँस्तमो विरमयन्नेष्यामि शेषं वयः ॥ १५ ॥

राजा ने कहा, आज से मैं चर-अचर, अर्थात् समस्त चराचर के गुरु शिव के चरण-कमल में चित्त को भ्रमर बनाकर, तमोगुण को रोककर, अपने जीवन को बिताऊँगा।

आगे चलकर विद्यापति मोक्ष-कथा में शिव-भक्त और काशी में मरने वालों को मोक्ष का अधिकारी बताते हैं। कारण,

काश्यां तनुपरित्यागात् साक्षात्कारेण चात्मनः।
भक्त्या त्रैलोक्यनाथस्य मोक्षः सिद्ध्यति तद्विदाम्[३] ॥ २ ॥

काशी में शरीर त्याग करने से, आत्मा के साक्षात्कार से और त्रैलोक्य नाथ की भक्ति से उनके ज्ञाता, (तत्त्ववेत्ता) को मोक्ष प्राप्त होता है। इसीलिए, कुछ लोग तत्त्वज्ञान को ही मोक्ष मानते हैं:—

"केचित् तत्त्वज्ञानमेव मोक्षधर्मं वदन्ति। काशीमरणशिवभक्तिप्रभृतिभिस्तत्त्वज्ञानं मन्यन्ते। तत्त्वज्ञान-द्वारा मोक्षः साध्य इति विशेषः।"

विभिन्न पुराणों उपपुराणों से भी उपर्युक्त मतों का समर्थन हो जाता है। मत्स्यपुराण[४] और पद्म-पुराण[५] में कहा गया है कि काशी में मृत्यु होने से इसी जीवन में परम मोक्ष प्राप्त हो जाता है। पापी, शठ एवं अधार्मिक व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाता है। इस विश्व में बिना योग के मानव मोक्ष नहीं पाते, किन्तु

३ पुरुषपरीक्षा, सं० सुरेन्द्र झा 'सुमन', पृ० १५५।
४ मत्स्यपुराण, १८३।११।
५ पद्मपुराण, ६. ३३. १८।

अविमुक्त में निवास करने से भोग एवं मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं (मत्स्यपुराण, १८५. १५. १६)। समय से ग्रह एवं नक्षत्र गिर सकते हैं, किन्तु अविमुक्त में मरने से कभी भी पतन नहीं हो सकता।[6]

विद्यापति के अनुसार मोक्ष एक प्रकार का है, किन्तु मुमुक्षु या तत्त्वज्ञानी तीन प्रकार के होते हैं—निर्बन्धी, निःस्पृह एवं लब्धसिद्धि :

निर्बन्धी निःस्पृहश्चैव लब्धसिद्धिस्तथैव च ।
मोक्ष एकविधः प्रोक्तस्त्रिविधास्तु मुमुक्षवः ॥ २ ॥[7]

नैबन्धिक विद्यापति पुनः मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि एक उपाय वेद-सम्मत है। सर्वप्रथम आत्मा को देखें, सुनें, मनन करें, निदिध्यासन करें—साक्षात् करें। तात्पर्य यह कि पहले वेदवाक्यों के द्वारा आत्मा का श्रवण करना, पश्चात् वेद के वाक्यों से बोधित जो आत्मा है, वह वैसी है अथवा नहीं यह तर्क पूर्ण अनुमान से जानना चाहिए। कहा भी गया है :

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति:, आत्मा च सततं ध्येय इति दर्शनहेतवः।

अर्थात्, जो मनुष्य शब्द-निष्णात है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् उस आत्मा का हमेशा ध्यान करता रहे। इस प्रकार मन धीरे-धीरे विषयों से विनिवृत्त हो निश्चलता को प्राप्त हो जाता है और मन भी इसी में लीन हो जाता है। बस यही मुक्ति का उपाय है। उपनिषद का भी यही कथन है :

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं, कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ ९ ॥
निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ १० ॥

अर्थात्, मन दो प्रकार के कहे गये हैं—शुद्ध और अशुद्ध। अशुद्ध वह है, जिसमें कुछ इच्छा-पूर्ति की कामना रहे। इच्छा से रहित मन शुद्ध है। विषय की आसक्ति से रहित मन जब हृदय में समाहित होकर निर्मल हो जाता है, तब वह परम-पद प्राप्त करता है। कारण, 'मनसस्तु विषयासङ्गो दुर्निवारः। मनसि निर्विषये सति सुगम एव मुक्तेः पन्थाः।' अर्थात् विषय के प्रति मन की आसक्ति रुकने वाली नहीं है। मन विषय-रहित हो, तो मुक्ति का पद सुगम हो जाता है।

इसीलिए विद्यापति मोक्षार्थी को निर्बन्धी बनने के लिए भी कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि—इन आठों अंगों से सम्पन्न योग[8] के साधन करनेवाले आत्मज्ञानी निर्बन्धी कहलाते हैं :

निर्बन्धाज्जलधि तरन्ति मनुजा बध्नन्ति वन्यं गजं,

६ मत्स्यपुराण, १८५–९१ = काशी-खण्ड, ६४।१८; विस्तृत वर्णन के लिये द्रष्टव्य, धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवादक, अर्जुन चौबे काश्यप, भाग, ३, पृ० ११९८–५० ।
७ पुरुषपरीक्षा, सम्पादक, सुरेन्द्र झा, सुमन, पृ० ९५५ ।
८ किरनावली, सम्पादक, डॉ० इन्द्रकान्त झा, पृ० ३६ का पाद टिप्पणी, १ से ७ तक ।

विद्यानामपि यान्ति पारमुपरि भ्राम्यन्ति रव्यौरपि ।
योगाभ्यासरता जितेन्द्रियगणा जित्वा समीरं शनै-
र्दुर्लभं परमं पदं सुमनसः पश्यन्ति निर्वेन्धिनः ॥ १२ ॥

लेकिन, निःस्पृह मुमुक्षु की चर्चा में कहा गया है कि 'तृष्णापरित्यागे सति ज्ञानमपि मोक्षसाधकम्', अर्थात् तृष्णा का परित्याग करने के पश्चात् प्राप्त ज्ञान मोक्ष का साधक है।

मुनि और राजा के प्रश्नोत्तर के पश्चात् उसी परिच्छेद में धर्म की परिभाषा और धर्माचरण—सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालते हुये विद्यापति ने कहा है कि :

दानाध्ययनयागादि वेदवाक्यानुसारितः ।
स्वाभीष्टसाधकः कर्मविशेषो धर्म उच्यते ॥ २ ॥

दान, अध्ययन, याग आदि वेदवाक्य के अनुसार अभीष्ट साधक कर्म-विशेष ही धर्म है। पुनश्च, वे कहते हैं कि वेद-बोधित जो धर्म है, वही समीचीन है—'वेदबोधितो धर्म एव समीचीनः।'

उन्होंने केवल ईश्वर-पूजा को ही धर्म नहीं कहा है, कुल परम्परागत धर्म को भी विहित कहा है। अर्थात् भगवान की इच्छा से जिसने जिस कुल में जन्म लिया है, उसमें जो कर्म परम्परा से देखा जाता है, उसके लिए वही करणीय है : क्योंकि वही कुलाचार उसके लिए सही धर्म है–किन्तु धातुः प्रपञ्चे यत्र यातोऽसि तत्कुल क्रमागतमेव पन्थानुसर। एष एव ते धर्मः। यदि उस कर्म से कोई प्रमाद हो, तो इसके दोषी विधाता कहे जायेंगे। इसमें कौलिक धर्म का आचरण करने वाले का कोई दोष नहीं है।

इसी प्रसंग में विद्यापति ने पुनः कहा है कि 'तद् उपवासव्रतपूजाध्यानादिभिस्तदाराधनमेव धर्मः।' अर्थात् उपवास, व्रत, पूजा, ध्यान आदि से उस ईश्वर की आराधना करना ही धर्म है। 'तं धर्मं कुरुते यः स धार्मिकः।' अर्थात् उस धर्म का आचरण करनेवाले ही धार्मिक हैं। वे तीन प्रकार के होते हैं–सात्त्विक, तामस और अनुशयी।

सात्त्विक पुरुष जो नहीं करना चाहिए, उसे दूर से ही त्याग देते हैं, वह परहिंसा और पर-स्त्री से विरत रहने वाला ब्रह्मज्ञानी होता है। ऐसे 'सात्त्विक' के लिए गंगा भी लालायित रहती है। वह दौड़ती हुई आकर उसे अपनी गोद में ले लेती है[1]।

तत्काल स्फूर्ति होने पर साहस से तप के आचरण में जो लग जाता है वह तमोगुण से युक्त रहने के कारण 'तामस' धार्मिक माना जाता है :

तत्क्षणस्फूर्तिजातेन साहसेन तपश्चरन् ।
तमोगुणेन संयुक्तस्तामसो धार्मिको मतः ॥ १ ॥

वैसा आदमी स्वर्ग का भागी होता है। जो पाप करने के बाद पुनः पश्चात्ताप करके पाप से विमुख होकर तप का आचरण करता है, वह 'अनुशयी' धार्मिक कहलाता है :

१ पुरुषपरीक्षा, सम्पादक, सुरेन्द्र झा 'सुमन', पृ० ११९–१२; पुरुषपरीक्षा, सम्पादक, रमानाथ झा, पृ० ११५–१७।
1. 2. 82-83.

पापं कृत्वानुतापेन पुनः पापपराङ्मुखः ।
तपश्चरति यः पश्चाद् धार्मिकोऽनुतपी भवेत् ॥ १ ॥

और, द्वेष आदि दोष से दूर, दया आदि गुण से युक्त तथा विषयादि से रहित जो मुनि-वृत्तिधारी है, वही 'निस्पृह' कहलाता है :

दोषैं द्वेषादिभिस्त्यक्तो गुणैर्युक्तो दयादिभिः ।
व्यावृत्तो विषयेभ्यश्च निःस्पृहो मुनिरुच्यते ॥ १ ॥

वैसे लोगों के लिए सब धन मिट्टी के ढेले के सदृश, सब स्त्री माता के सदृश और सब जीव मित्र के समान होते हैं। उसके हृदय में परावेदन का भाव कभी उठता ही नहीं है :

वसु लोष्टसमानं मे स्त्रियः सर्वाश्च मातरः ।
जन्तवः सुहृदः सर्वे परबुद्धिर्न कुत्रचित् ॥

विद्यापति ने धर्म, धार्मिक कृत्यों एवं विशुद्ध धर्माचरण को सर्वश्रेष्ठ माना है। उनकी मान्यता है कि धर्म के प्रति आस्था एवं आस्तिक बुद्धि होनी चाहिए :

जन्म जन्म मनुष्याणां कामात्पापानि कुर्वताम् ।
यदा धर्मे भवेद्बुद्धिस्तदेव दिवसं शुभम् ॥

काम, अर्थात् वासना से जन्म-जन्म पाप का आचरण करनेवाले को जब धर्म में प्रवृत्ति हो, तभी उनके लिए शुभ दिन है। कारण,

यदैवाराध्यते धर्मस्त्यक्तदोषेण जन्तुना ।
तदादिरेव कालोऽस्तु स्वर्गाय च सुखाय च ॥ १३ ॥

दोष को त्यागकर प्राणी जब धर्म की आराधना करता है, तभी उसका समय स्वर्ग के लिए और सुख के लिए आरम्भ होता है। कारण, जैसे औषधि से रोगी की व्याधि दूर होती है, वैसे ही पुण्य से पापी का पाप नष्ट हो जाता है :

भेषजेन यथा व्याधिरपगच्छति रोगिणः ।
पुण्येनापि तथा मन्ये पापं नश्यति पापिनः ॥

अतः विद्यापति ने यहाँ 'धर्मे भवेद् बुद्धिः' एवं 'आराध्यते धर्मः' पर अधिक बल दिया है। कारण यह है कि धर्माचरण करने वाले का कभी विनाश नहीं होता। उसे कलंक नहीं लगता; क्योंकि वह सत्पथ एवं पवित्र पथ पर रहता है। 'अनुशयीकथा' में राजा को उपदेश दिया गया है कि वह धर्म अर्जन करे—'धर्ममर्जय राजेन्द्र'। क्योंकि राज्य का कारण धर्म है—'धर्मो राज्यस्य कारणम्'। दान भी धर्म ही है—'धनः पुण्यं च दानेन'। परोपकार, निःस्वार्थ-भावना एवं मानव-कल्याण सबसे प्रबलतम धर्म है :

न प्रयागात्परं तीर्थं कालो नार्कग्रहात्परः ।
परप्राणपरित्राणात्परो धर्मो न विद्यते ॥

प्रताप से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं, पूर्व जन्म से बढ़कर कोई बल नहीं है और बुद्धि की सम्पन्नता से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। विद्यापति कहते हैं कि — 'परीक्षकाः पुरुषान् सादरं परीक्षन्ताम्', यथा —

सद्गुणैः पुरुषार्थपरिक्षितैः ।
सर्वं शास्त्रसम्मतं सम्यगनुष्ठेयम् ॥

तात्पर्य यह कि जीवनार्थी पुरुष को शक्ति का अर्जन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त धर्म में श्रद्धा रखनी (इच्छा धर्म श्रद्धा) चाहिए।

इस प्रकार, पुरुषपरीक्षा में विद्यापति ने धर्म और दर्शन के विविध अंगों पर भी ही प्रकाशकारी ढंग से प्रकाश डाला है। कहना तो यह चाहिए कि पुरुषपरीक्षा भारतीय धर्म की एक ऐसी आचार-संहिता है जिसमें विद्यापति की धार्मिक मान्यताओं का अधिकतर पोषण विनियोग हुआ है।

THE JOURNAL
OF THE
BIHAR RESEARCH SOCIETY
L. N. MISHRA COMMEMORATION VOLUME

Vols. LXIII-LXIV 1977–1978

Chief Editor
Professor Upendra Thakur

Editor-in-Charge
Dr. K. K. Mandal

PUBLISHED BY
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY
PATNA